इक अखबार बिन सब सून

भारत का संविधान पर्व दिवस 26 जनवरी जनवरी को परम्परानुसार अखबारों के दफ्तरों में अवकाश रहा लिहाजा 27 जनवरी को अखबार नहीं आया और इक प्याली चाय सूनी-सूनी सी रह गयी. 28 तारीख को वापस चाय की प्याली में ताजगी आ गयी क्योंकि अखबार साथ में हाथ में था. अभी हम 2023 में चल रहे हैं और कल 29 तारीख होगी जनवरी माह की और यह तारीख हमारे इतिहास में महफूज है क्योंकि इसी तारीख पर जेम्स आगस्ट हिक्की ने भारत के पहले समाचार पत्र का प्रकाशन आरंभ किया था. शायद तब से लेकर अब तक इक प्याली चाय के साथ अखबार का हमारा रिश्ता बन गया है. हिक्की के अखबार का प्रकाशन 1780 में हुआ था और इस मान से देखें तो भारत की पत्रकारिता की यात्रा 243 साल की हो रही है. भारतीय पत्रकारिता का इतिहास इस बात का गवाह रहा है कि उसने हमेशा जन-जागरण का लोकव्यापी कार्य किया है. कबीर के शब्दों में ढालें तो 'ना काहू से दोस्ती, ना काहू से बैर' वाली परम्परा का पोषण भारतीय पत्रकारिता ने किया है.

शब्द सत्ता का दूसरा नाम अखबार है और शायद यही कारण है कि रसूख वालों को 1780 में जिन अखबारों से डर लगता था, 2023 में भी वही डर कायम है. कानून को अपने हिसाब से जोड़-तोड़ कर लेने में माहिर सत्ताधीश इस बात से हमेशा सजग रहे हैं कि अखबार हमेशा उनसे दूर रहें. आजादी के दौर में अंग्रेजों की नाक में दम करने वाली पत्रकारिता ने स्वाधीन भारत में भी अपने दायित्व को बखूबी निभाया. नए-नए शासकों और सत्ताधीशों के लिए अखबार में छप जाने वाली इबारत उनकी नींद उड़ा देती है. पत्रकारिता के इस सात्विक कर्म के कारण ही उसे भारतीय परम्परा में चौथा स्तंभ पुकारा गया. इस चौथे स्तंभ ने भी अपनी मर्यादा और दायित्व को पूरी जवाबदारी से निभाते देखा गया. 2023 में हम जब अखबारों की चर्चा करते हैं तो कई विषम स्थितियां हमारे सामने आती हैं. साल 1975 का वह आपातकाल का दौर जिसने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को छिन्न-भिन्न करने की कोशिश की. लेकिन कुछ ऐसे अखबार भी रहे जिन्होंने टूटना पसंद किया, झुकना नहीं. इस परिप्रेक्ष्य में कभी लाईमलाईट में रहने वाले लालकृष्ण आडवानी की वह टिप्पणी सामयिक लगती है जब उन्होंने कहा था-'अखबारों को झुकने के लिए कहा गया लेकिन वे रेंगने लगे।'

शायद इसके बाद ही अखबारों की दुनिया बदल गयी। अखबार पत्रकारिता धर्म से परे होकर उद्योग के रूप में सूरत अख्तियार करने लगे. आर्थिक संसाधनों से लैस होकर सत्ता के करीब होते गए और पत्रकारिता हाशिये पर जाने लगी. अखबार देखते ही देखते टेलीविजन में बदल गये. रंगीन फिसलन वाले कागज पर पेजथ्री का कब्जा हो गया. गरीब-गुरवा और शोषित अखबारों से उसी तरह दूर कर दिये गये जिस तरह आज हम टेलीविजन के परदे पर देखते हैं. सत्ता शीर्ष के नाश्ते से लेकर देररात तक शयन

कक्ष में जाने की दैनंदिनी क्रियाओं को अखबारों ने महिमामंडित कर छापने लगे. एक पन्ने पर मोहक शब्दों में गुथी गाथा थी तो पारिश्रमिक के तौर पर अगले पन्ने भर का विज्ञापन. यह सच है और इस सच से मुंह चुराती पत्रकारिता ना कल थी और ना आगे कभी होगी क्योंकि पत्रकारिता का मूल धर्म 'ना काहू से दोस्ती, ना काहू से बैर' की रही है और रहेगी.

29 जनवरी, 1780 का स्मरण करते हैं तब हम खुद से मुंह चुराते हैं क्योंकि इस तारीख को भारतीय पत्रकारिता की नींव रखी गयी थी लेकिन आज 2023 में पत्रकारिता का नाम और रूप बदलकर मीडिया हो गया है. यह भी कम दुर्भाग्यपूर्ण बात नहीं है कि 'ना काहू से दोस्ती, ना काहू से बैर' वाली लीक को छोडक़र एक वर्ग इधर का हो गया तो एक वर्ग उधर का हो गया. पाठकों और दर्शकों को भी इसी श्रेणी में बांट दिया गया. जो सत्ता विरोधी बोल और लिख रहा था, वह ईमानदार की श्रेणी में आ गया और जो सत्ता के समर्थन में लिख-बोल रहा था, वह उनका पी_ू हो गया. सच तो यह है कि दोनों श्रेणी के लोग उस पत्रकारिता के हैं ही नहीं जिसकी कल्पना गांधी, तिलक, माखनलाल चतुर्वेदी, पराडक़रजी और विद्यार्थी किया करते थे. सिनेमा के सौ साल के सफर में जब 'डर्टी पिक्चर' देखते हैं तो वाह-वाह कर उठते हैं लेकिन अढ़ाई सौ साल की पत्रकारिता के 'डर्टी मीडिया' की बात करने से हम सहम जाते हैं.

नाउम्मीदी का एक घना अंधेरा दिखता है. इसे आप कोहरे में घिरा-छिपा भी कह सकते हैं क्योंकि ना तो घना अंधेरा हमेशा बना रहेगा और ना कोहरे में लिपटा वह झूठ जो सच बनकर दिखाया और समझाया जाता है. अखबार की ताकत हमेशा से मौजूं रही है और आगे भी उसके इस बेबाकीपन से आपका सामना होगा. यह इत्तेफाकन नहीं होगा बल्कि सुनियोजित और सुगठित ढंग से होगा. इस सच के सवाल का जवाब कौन देगा कि जब अखबार अविश्वसनीय हो गए हैं तो 27 जनवरी या 16 अगस्त को क्यों हम उसकी राह तकते हैं ? अखबार इतना ही अविश्वसनीय है तो कोरोना में हमने उससे परहेज क्यों नहीं किया ? जो लोग मेरे हमउम्र हैं, उन्हें याद दिला दूं कि शशि कपूर अभिनीत 'न्यू देहली टाइम्स' ने आगाह कर दिया था कि पत्रकारिता और सत्ता का गठजोड़ कैसे होगा. कैसे पत्रकारिता का चेहरा बदलेगा लेकिन एक खबर पूरे तंत्र को हिला देती है यदि उसमें तडक़ा ना लगाया जाए. तथ्यों और तर्कों के साथ उसे समाज के समक्ष रखा जाए. बहुतेरे साथियों को इस बात की शिकायत होती है कि अब खबर का असर नहीं होता है तो क्या कोई बताएगा कि आपने खबर लिखी कौन सी है और क्यों असर नहीं हुआ। आप मनोरंजन की खबरें लिखें, तो उसे उसी श्रेणी में रहने दें लेकिन लोक समाज के हित में लिखने का साहस रखते हैं तो पांव में बिबाई से ना डरें.

कितना भी आप रो लें, सिर पीट लें लेकिन मुझे यकिन है कि 2023 की 29 जनवरी को भी हम उसी 1780 की 29 जनवरी को जी रहे हैं जिसने भारत में पत्रकारिता का श्रीगणेश किया था. हां, उन अखबारों और पत्रकारों को छोड़ दें जिन्हें अखबार को लोक समाज का प्रहरी बने रहने के बजाय उद्योग बनना है. जब तक 'ना काहू से दोस्ती, ना काहू से बैर' से अखबार का रिश्ता बना रहेगा तब तब इक प्याली चाय के साथ दूसरे हाथ में अखबार की जरूरत महसूस होती रहेगी.

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार एवं शोध पत्रिका 'समागम' के संपादक हैं)